I J C R M
International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

भारतीय समाज में विविधता एवं सामाजिक एकता: जाति, धर्म और सामूहिक पहचान का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय
स्वतंत्र शोधकर्ता, समाजशास्त्र, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय अयोध्या, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.20080604

सारांश

भारतीय समाज अपनी बहुलतावादी संरचना के कारण विश्व के सबसे विशिष्ट समाजों में से एक है। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति तथा जीवन-शैली के विविध स्वरूप एक साथ विद्यमान हैं। यह विविधता भारतीय समाज की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत का महत्त्वपूर्ण अंग है। यद्यपि भारतीय समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक विषमताएँ और विभाजन पाए जाते हैं, फिर भी सामाजिक एकता और सामूहिक पहचान की भावना निरंतर बनी रहती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भारतीय समाज में विद्यमान सामाजिक एवं धार्मिक विविधताओं का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते हुए यह समझना है कि जाति और धर्म जैसे कारक सामूहिक पहचान के निर्माण में किस प्रकार भूमिका निभाते हैं। यह अध्ययन द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, जिसमें जनगणना आँकड़ों, सरकारी प्रतिवेदनों, शोध ग्रंथों, पुस्तकों तथा शोध-पत्रों आदि का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में यह पाया गया कि भारतीय समाज में विविधताओं के बावजूद संविधान, लोकतांत्रिक मूल्य, साझा सांस्कृतिक परंपराएँ तथा राष्ट्रीय चेतना सामाजिक एकता को सुदृढ़ करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। जातीय एवं धार्मिक भिन्नताएँ कभी-कभी सामाजिक तनाव उत्पन्न करती हैं, किन्तु भारतीय समाज की अनुकूलनशीलता और सहअस्तित्व की परंपरा उन्हें संतुलित करती है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "अनेकता में एकता" केवल एक सांस्कृतिक आदर्श नहीं, बल्कि भारतीय समाज की जीवंत सामाजिक वास्तविकता है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 05-04-2026
- **Accepted:** 26-04-2026
- **Published:** 08-05-2026
- **IJCRM:**5(3); 2026: 95-103
- **©2026, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Article

पाण्डेय श क. भारतीय समाज में विविधता एवं सामाजिक एकता: जाति, धर्म और सामूहिक पहचान का समाजशास्त्रीय विश्लेषण. Int J Contemp Res Multidiscip. 2026;5(3):95-103.

Access this Article Online

www.multiarticlesjournal.com

मुख्य शब्द: भारतीय समाज, सामाजिक विविधता, जातिगत विविधता, धार्मिक विविधता, सामूहिक पहचान, सामाजिक एकता, अनेकता में एकता

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

1. प्रस्तावना

भारतीय समाज विश्व के प्राचीनतम, जटिल तथा बहुलतावादी समाजों में से एक है, जिसकी सामाजिक संरचना असंख्य विविधताओं से निर्मित हुई है। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, जीवन-पद्धति तथा सामाजिक परंपराओं की बहुस्तरीय उपस्थिति देखने को मिलती है। भारत केवल भौगोलिक रूप से विशाल राष्ट्र नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यंत विविधतापूर्ण सभ्यता का प्रतिनिधित्व करता है। इस विविधता का निर्माण हजारों वर्षों की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं, सांस्कृतिक आदान-प्रदान, राजनीतिक परिवर्तनों तथा सामाजिक अंतःक्रियाओं के माध्यम से हुआ है। भारतीय समाज की यही विशेषता उसे विश्व के अन्य समाजों से अलग पहचान प्रदान करती है। भारतीय संविधान ने भी इस विविधता को स्वीकार करते हुए समानता, धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय तथा बंधुत्व जैसे मूल्यों को संवैधानिक आधार प्रदान किया है, जिससे विभिन्न समुदायों के मध्य सहअस्तित्व और पारस्परिक सम्मान की भावना विकसित होती है।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण आधार रही है। प्राचीन काल से ही जाति ने व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, पेशा, वैवाहिक संबंधों, भोजन संबंधी व्यवहारों तथा सामुदायिक जीवन को प्रभावित किया है। यद्यपि आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण और लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं ने जाति व्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप में परिवर्तन लाया है, फिर भी जाति आज भी सामाजिक पहचान का एक प्रभावशाली तत्व बनी हुई है। गोविंद सदाशिव घुर्ये ने भारतीय समाज को "जातीय एवं सांस्कृतिक बहुलता का संगठित रूप" माना है, जहाँ विभिन्न सामाजिक समूह अपनी विशिष्टता बनाए रखते हुए एक व्यापक सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बनते हैं। इसी प्रकार आंद्रे बेतेइये ने भारतीय समाज में जाति को "सामाजिक असमानता तथा सामाजिक एकीकरण" दोनों का आधार माना है।

धर्म भारतीय समाज की संरचना का दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम है। भारत में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध, जैन तथा पारसी जैसे अनेक धार्मिक समुदाय सहस्राब्दियों से साथ रहते आए हैं। धार्मिक विविधता ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाया है, वहीं अनेक धार्मिक परंपराओं ने सामाजिक जीवन के नैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप को आकार दिया है। धार्मिक संस्थाएँ केवल आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित नहीं करतीं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, सामुदायिक संबंधों तथा सामाजिक व्यवहार को भी दिशा देती हैं। भारतीय समाज में धार्मिक विविधता के बावजूद साझा उत्सवों, लोक परंपराओं तथा राष्ट्रीय अवसरों के माध्यम से एक सामूहिक सामाजिक चेतना विकसित होती है, जो सामाजिक एकता को मजबूत करती है।

भाषाई और सांस्कृतिक विविधता भी भारतीय समाज की एक अनूठी विशेषता है। भारत में सैकड़ों भाषाएँ और बोलियाँ बोली जाती हैं, जिनमें 22 भाषाओं को संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता प्राप्त है। विभिन्न राज्यों की अपनी विशिष्ट लोकसंस्कृतियाँ, वेशभूषा, भोजन-पद्धतियाँ, लोककला और त्योहार हैं। फिर भी इन विविधताओं के बीच भारतीय समाज में एक साझा सांस्कृतिक तत्त्व मौजूद है, जो लोगों को राष्ट्रीय स्तर पर जोड़ता है। "अनेकता में एकता" की अवधारणा इसी सामाजिक यथार्थ का प्रतीक है। एम. एन. श्रीनिवास के अनुसार "भारतीय समाज में सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक परिवर्तन समानांतर रूप से कार्य करते हैं, जिसके कारण विविधताओं के बावजूद सामाजिक एकता बनी रहती है।"

2. साहित्य समीक्षा

Ghurye (1969) गोविंद सदाशिव घुर्ये भारतीय समाजशास्त्र के प्रमुख विद्वानों में से एक माने जाते हैं जिन्होंने भारतीय समाज में जाति व्यवस्था और सांस्कृतिक विविधता का गहन अध्ययन किया। अपनी प्रसिद्ध कृति "Caste and Race in India" में उन्होंने जाति को केवल सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था न मानकर भारतीय सामाजिक संगठन की केंद्रीय संरचना के रूप में देखा। उनके अनुसार भारतीय समाज अनेक जातीय, सांस्कृतिक और धार्मिक समूहों से निर्मित है, परंतु इन विविधताओं के बावजूद समाज एक समन्वित सांस्कृतिक ढाँचे में कार्य करता है। घुर्ये ने जाति की विशेषताओं जैसे वंशानुगत सदस्यता, सामाजिक विभाजन, भोजन और वैवाहिक प्रतिबंध तथा धार्मिक मान्यता का विश्लेषण किया। घुर्ये का मानना था कि भारतीय समाज में विविधता केवल विभाजन का कारण नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना की ऐतिहासिक निरंतरता का अंग भी है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि विभिन्न जातीय समुदायों की अपनी पृथक पहचान होते हुए भी वे व्यापक भारतीय संस्कृति का हिस्सा बने रहते हैं। उनके अध्ययन से यह समझने में सहायता मिलती है कि भारतीय समाज में सांस्कृतिक बहुलता और सामाजिक एकता परस्पर विरोधी नहीं बल्कि पूरक संबंध रखते हैं। भारतीय समाज की सामूहिक पहचान को समझने में घुर्ये का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है।

Bose (1975) निर्मल कुमार बोस ने भारतीय समाज में सांस्कृतिक विविधता और राष्ट्रीय एकता के संबंध को समझाने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। उन्होंने भारतीय समाज को एक ऐसे सांस्कृतिक ढाँचे के रूप में देखा जिसमें विभिन्न क्षेत्रीय, धार्मिक और सामाजिक समूह अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए एक व्यापक भारतीय सांस्कृतिक परंपरा से जुड़े रहते हैं। उनकी पुस्तक "The Structure of Hindu Society" में यह स्पष्ट किया गया कि भारतीय समाज में एकता का आधार केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक भी है। बोस के अनुसार भारतीय समाज की शक्ति उसकी समन्वयकारी प्रवृत्ति में निहित है। उन्होंने माना कि भारत में विभिन्न धार्मिक और सामाजिक परंपराएँ संघर्ष के साथ-साथ सहअस्तित्व की भावना को भी विकसित करती हैं। उनके विचार में स्थानीय संस्कृतियाँ और राष्ट्रीय संस्कृति एक-दूसरे के विरोध में नहीं बल्कि परस्पर पूरक रूप में कार्य करती हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज में अनेक भिन्नताओं के बावजूद सामूहिक पहचान का निर्माण संभव हुआ है। विविधता के भीतर सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक एकीकरण की प्रक्रिया को समझने में बोस का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

Karve (1965) इरावती कर्वे ने भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए परिवार, क्षेत्र, भाषा और जाति के अंतर्संबंधों का अध्ययन किया। उनकी प्रसिद्ध कृति "Kinship Organization in India" भारतीय समाज में सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक संगठन को समझने का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है। कर्वे ने बताया कि भारत में विभिन्न क्षेत्रों की सामाजिक परंपराएँ अलग-अलग होने के बावजूद उनमें एक सांस्कृतिक निरंतरता विद्यमान है। उनके अनुसार भारतीय समाज को समझने के लिए केवल जाति या धर्म पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि क्षेत्रीय परंपराएँ और पारिवारिक संरचनाएँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने भारतीय समाज को "एकता में विविधता" का उदाहरण माना,

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

जहाँ अलग-अलग समुदाय अपने विशिष्ट सामाजिक जीवन के साथ एक व्यापक सभ्यतागत ढाँचे से जुड़े रहते हैं। कर्वे का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि सामाजिक विविधता भारतीय समाज में विघटन का कारण नहीं बनती, बल्कि यह सामूहिक जीवन को बहुआयामी बनाती है। भारतीय सामाजिक पहचान के निर्माण में सांस्कृतिक निरंतरता की भूमिका को समझने में उनका योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

Singh (1973) योगेन्द्र सिंह ने भारतीय समाज में परंपरा और आधुनिकता के संबंधों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया। अपनी पुस्तक "Modernization of Indian Tradition" में उन्होंने बताया कि भारतीय समाज में आधुनिकता का विकास पश्चिमी समाजों की तरह पूर्णतः परंपरा-विरोधी नहीं रहा, बल्कि यहाँ आधुनिकता ने परंपरागत संरचनाओं के साथ समन्वय स्थापित किया। उनके अनुसार भारतीय समाज में सामाजिक विविधता के बावजूद साझा सांस्कृतिक मूल्यों ने सामाजिक एकता को बनाए रखा है। उन्होंने स्पष्ट किया कि भारतीय समाज में जाति, धर्म और परिवार जैसी संस्थाएँ आधुनिकता के प्रभाव से परिवर्तित हुई हैं, किंतु समाप्त नहीं हुईं। इसके विपरीत उन्होंने नए सामाजिक संदर्भों में स्वयं को पुनर्गठित किया है। योगेन्द्र सिंह का दृष्टिकोण इस बात पर बल देता है कि भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक निरंतरता दोनों साथ-साथ चलते हैं। सामूहिक पहचान के निर्माण में परंपरागत सांस्कृतिक प्रतीकों और आधुनिक राष्ट्रीय मूल्यों की संयुक्त भूमिका को समझने में उनका अध्ययन विशेष रूप से उपयोगी है।

Beteille (1966) आंद्रे बेतेइये ने भारतीय समाज में सामाजिक असमानता, स्तरीकरण और शक्ति-संबंधों का गहन अध्ययन किया। उनकी कृति "Caste, Class and Power" भारतीय ग्रामीण समाज में जाति, वर्ग और सत्ता के अंतर्संबंधों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। बेतेइये के अनुसार भारतीय समाज को समझने के लिए केवल जाति पर्याप्त नहीं है, बल्कि वर्ग और राजनीतिक शक्ति को भी साथ में देखना आवश्यक है। उन्होंने दिखाया कि आधुनिक भारतीय समाज में पारंपरिक जाति व्यवस्था और आधुनिक वर्ग संरचना साथ-साथ कार्य करती हैं। बेतेइये ने सामाजिक विविधता को केवल सांस्कृतिक अंतर के रूप में नहीं बल्कि असमान अवसरों और संसाधनों के वितरण से भी जोड़ा। उनके अनुसार भारतीय समाज में असमानताओं के बावजूद सामाजिक संस्थाएँ सामूहिक जीवन को बनाए रखने में योगदान देती हैं। उनका विश्लेषण यह समझने में सहायक है कि सामाजिक विभाजन के बीच भी सामाजिक एकता कैसे बनी रहती है। भारतीय समाज में सामूहिक पहचान, सामाजिक स्तरीकरण और परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है।

Sougaijam (2016) ने अपने लेख "Diversification and Unification in Indian Social Identity" में भारतीय समाज की विविधता और एकता के अंतर्संबंध का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत किया है। लेखिका के अनुसार भारत एक बहुजातीय, बहुभाषिक, बहुधार्मिक और बहुसांस्कृतिक समाज है, जहाँ दो हजार से अधिक जातीय समूह, अनेक धर्म तथा चार प्रमुख भाषा परिवार पाए जाते हैं। यह विविधता भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता है, किंतु इसके बावजूद भारतीय समाज में एक गहरी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता विद्यमान है। लेख में विविधता को भाषा, धर्म, नस्ल और जातीयता के आधार पर समझाया गया है। लेखिका बताती हैं कि भारत में भाषाई विविधता अत्यंत व्यापक है, जहाँ अनेक मातृभाषाएँ लोगों की सांस्कृतिक पहचान का आधार बनती हैं। धार्मिक विविधता भी भारतीय समाज का महत्वपूर्ण अंग है, जहाँ हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन और बौद्ध समुदाय सह-अस्तित्व में रहते हैं। इसी प्रकार जातीय और नस्लीय विविधताओं ने भारतीय सामाजिक संरचना को जटिल बनाया है। आशा सौगैजाम का मुख्य तर्क यह है कि इन विविधताओं के बीच भारतीय समाज को जोड़ने वाले अनेक तत्त्व कार्य करते हैं, जैसे साझा सांस्कृतिक परंपराएँ, तीर्थ परंपरा, ऐतिहासिक अनुभव, स्वतंत्रता संग्राम और संवैधानिक मूल्य। लेखिका ने "एकता में विविधता" को भारतीय समाज की विशिष्ट पहचान माना है।

3. सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

संरचनात्मक क्रियात्मकतावाद: संरचनात्मक क्रियात्मकतावाद सिद्धांत, जिसके प्रमुख प्रतिपादक एमिल दुर्खीम माने जाते हैं। दुर्खीम के अनुसार समाज एक संगठित सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न संस्थाएँ जैसे परिवार, धर्म, शिक्षा और राजनीति परस्पर जुड़े होते हैं, और सामाजिक संतुलन बनाए रखने में अपना योगदान देते हैं। यह दृष्टिकोण में समाज को एक जीवित शरीर के रूप में देखता है, जहाँ प्रत्येक अंग का अपना विशिष्ट कार्य होता है। यदि कोई संस्था अपने कार्य को संतुलित रूप से निभाती है, तो समाज में स्थिरता और एकता बनी रहती है। दुर्खीम सामाजिक एकता को दो रूपों में समझाते हैं। एक यांत्रिक एकता और दूसरा सावयवी एकता। यांत्रिक एकता पारंपरिक समाजों में पाई जाती है जहाँ समानता के आधार पर लोग एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं, जबकि सावयवी एकता वर्तमान आधुनिक समाजों में श्रम-विभाजन और पारस्परिक निर्भरता पर आधारित होती है। भारतीय समाज जैसे बहुलतावादी समाज में यह सिद्धांत विशेष रूप से उपयोगी है क्योंकि यहाँ जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति की विविधताओं के बावजूद सामाजिक जीवन एक साझा संरचना के भीतर संचालित होता है। विभिन्न समुदाय अपने-अपने सांस्कृतिक स्वरूप बनाए रखते हुए भी व्यापक सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा बने रहते हैं। संरचनात्मक क्रियात्मकतावादी दृष्टिकोण यह समझने में सहायक है कि भारतीय समाज में विविधता केवल विभाजन का कारण नहीं है, बल्कि सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न घटकों के रूप में कार्य करती है। धार्मिक उत्सव, पारिवारिक संबंध, सामाजिक परंपराएँ और राष्ट्रीय संस्थाएँ मिलकर सामाजिक एकीकरण को सुदृढ़ करती हैं। इस प्रकार यह सिद्धांत भारतीय समाज में "अनेकता में एकता" की अवधारणा को समाजशास्त्रीय आधार प्रदान करता है और यह स्पष्ट करता है कि विविधता के भीतर भी सामाजिक समरसता संभव है।

संघर्ष सिद्धांत: संघर्ष सिद्धांत, जिसके मूल प्रतिपादक कार्ल मार्क्स माने जाते हैं। मार्क्स के अनुसार समाज एक संतुलित व्यवस्था न होकर विभिन्न समूहों के बीच शक्ति, संसाधनों और प्रभुत्व के लिए निरंतर संघर्ष का क्षेत्र है। मार्क्स यह प्रतिपादित करते हैं कि समाज में विद्यमान आर्थिक और सामाजिक असमानताएँ ही सामाजिक संघर्ष को जन्म देती हैं। यद्यपि मार्क्स ने मुख्यतः वर्ग-संघर्ष पर बल दिया, किंतु उनके सिद्धांत का उपयोग जाति, धर्म और सामाजिक पहचान जैसे व्यापक सामाजिक आयामों को समझने में भी किया जा सकता है। मार्क्स के अनुसार समाज में प्रभुत्वशाली समूह अपने हितों की रक्षा के लिए सामाजिक संस्थाओं का उपयोग करते हैं। धर्म को उन्होंने "अफीम" कहा क्योंकि कई बार धार्मिक मान्यताएँ सामाजिक असमानताओं को वैध ठहराने का कार्य करती हैं। यदि भारतीय

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

समाज के संदर्भ में देखा जाए तो जाति और धर्म केवल सांस्कृतिक पहचान के स्रोत नहीं हैं, बल्कि कई परिस्थितियों में वे सामाजिक शक्ति-संरचना और संसाधनों के वितरण को भी प्रभावित करते हैं। उच्च सामाजिक समूह लंबे समय तक सामाजिक प्रतिष्ठा, शिक्षा और आर्थिक अवसरों पर नियंत्रण बनाए रखते रहे, जिससे सामाजिक विभाजन मजबूत हुआ। इस दृष्टि से संघर्ष सिद्धांत भारतीय समाज की अंतर्निहित असमानताओं को समझने में उपयोगी सिद्ध होता है। संघर्ष सिद्धांत यह स्पष्ट करने में सहायक है कि भारतीय समाज में विविधता हमेशा सौहार्द का आधार नहीं होती, बल्कि कभी-कभी वही विविधता सामाजिक तनाव, प्रतिस्पर्धा और वर्चस्व का कारण बन जाती है। जातीय, धार्मिक और सामुदायिक पहचानें राजनीतिक और सामाजिक हितों से जुड़कर संघर्ष का रूप ले सकती हैं। इसके बावजूद यही संघर्ष सामाजिक परिवर्तन का माध्यम भी बन सकता है, क्योंकि असमानताओं के विरुद्ध संघर्ष से सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में परिवर्तन संभव होता है। इस प्रकार मार्क्स का संघर्ष सिद्धांत भारतीय समाज में विविधता और एकता के बीच मौजूद जटिल संबंधों को समझने का एक प्रभावी सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है।

प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद: प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद समाजशास्त्र का सूक्ष्म स्तर का सिद्धांत है, जिसके प्रमुख प्रतिपादक जार्ज हर्बर्ट मीड माने जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार समाज केवल संस्थाओं और संरचनाओं से निर्मित नहीं होता, बल्कि व्यक्तियों के दैनिक सामाजिक व्यवहार, भाषा, संकेतों और प्रतीकों के माध्यम से निरंतर निर्मित होता है। मीड के अनुसार व्यक्ति अपनी पहचान सामाजिक अंतःक्रिया की प्रक्रिया में विकसित करता है। जब व्यक्ति दूसरों के साथ संवाद करता है, तब वह स्वयं को दूसरों की दृष्टि से समझना प्रारम्भ करता है, और यही प्रक्रिया सामाजिक आत्म तथा सामूहिक पहचान के निर्माण का आधार बनती है।

मीड ने बताया कि समाज में प्रयुक्त भाषा, धार्मिक प्रतीक, सांस्कृतिक चिह्न और सामाजिक व्यवहार केवल संचार के साधन नहीं हैं, बल्कि वे अर्थ निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा होते हैं। भारतीय समाज के संदर्भ में जाति, धर्म, भाषा, वेशभूषा, उत्सव और सांस्कृतिक परंपराएँ ऐसे ही प्रतीक हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति स्वयं को किसी विशेष समुदाय से जोड़ता है। उदाहरण के लिए, धार्मिक पर्व, पारंपरिक रीति-रिवाज और सामूहिक अनुष्ठान सामाजिक समूहों के भीतर "हम" की भावना को विकसित करते हैं। इस प्रकार सामूहिक पहचान केवल जन्म से प्राप्त नहीं होती, बल्कि सामाजिक सहभागिता और सांस्कृतिक अनुभवों के माध्यम से निर्मित होती रहती है। प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद का उपयोग यह समझने के लिए किया जा सकता है कि भारतीय समाज में विविध समुदाय अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए व्यापक राष्ट्रीय पहचान से कैसे जुड़े रहते हैं। व्यक्ति एक ही समय में जातीय, धार्मिक और राष्ट्रीय पहचान को धारण कर सकता है, और यह बहुस्तरीय पहचान सामाजिक अंतःक्रिया से निर्मित होती है। यह सिद्धांत यह स्पष्ट करता है कि विविधता केवल बाहरी अंतर नहीं है, बल्कि अर्थों, प्रतीकों और साझा अनुभवों के माध्यम से सामाजिक एकता का निर्माण भी करती है। इसलिए भारतीय समाज में सामूहिक पहचान और "अनेकता में एकता" की अवधारणा को समझने में मीड का दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

4. उद्देश्य

- भारतीय समाज में जातीय, धार्मिक और सांस्कृतिक विविधता की प्रकृति का अध्ययन करना।
- विविधता और सामाजिक एकता के मध्य संबंध का विश्लेषण करना।
- सामूहिक पहचान के निर्माण में सामाजिक प्रक्रियाओं की भूमिका को समझना।
- आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का विविधता और एकता पर प्रभाव ज्ञात करना।
- सामाजिक समरसता को बनाए रखने वाले प्रमुख कारकों की पहचान करना।

5. शोध पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय समाज की बहुआयामी संरचना को समझने के लिए गुणात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह पद्धति सामाजिक व्यवहार, सांस्कृतिक प्रतीकों तथा सामूहिक पहचान की व्याख्या करने में सहायक होती है। अध्ययन में आंकड़ों के संकलन हेतु मुख्यतः द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है, जिसमें पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नल लेखों, जनगणना रिपोर्ट तथा सरकारी दस्तावेजों आदि को शामिल किया गया है। इन स्रोतों के माध्यम से जाति, धर्म, सांस्कृतिक विविधता और सामाजिक एकता के विभिन्न आयामों का विश्लेषण किया गया है। शोध की प्रकृति वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। वर्णनात्मक पद्धति से भारतीय समाज की विविधताओं का प्रस्तुतीकरण किया गया है, जबकि विश्लेषणात्मक पद्धति से यह समझने का प्रयास किया गया है कि सामाजिक संस्थाएँ और सांस्कृतिक मूल्य किस प्रकार एकता को बनाए रखते हैं।

भारतीय समाज का बहुलतावादी स्वरूप

भारतीय समाज अपनी बहुलतावादी संरचना के कारण विश्व के सबसे विशिष्ट समाजों में से एक है। यहाँ धर्म, भाषा, जाति, संस्कृति तथा जीवन-शैली की विविधताएँ एक साथ विद्यमान हैं। यह विविधता केवल सामाजिक अंतर नहीं, बल्कि सामाजिक संगठन का आधार है, जो "अनेकता में एकता" की अवधारणा को मूर्त रूप प्रदान करती है। भारतीय समाज के इस बहुलतावादी स्वरूप को समझने के लिए जनगणना आधारित आँकड़े अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

धार्मिक विविधता: भारत एक बहुधार्मिक समाज है, जहाँ विभिन्न धर्मों के अनुयायी अपनी-अपनी आस्थाओं, परंपराओं एवं जीवन-शैलियों के साथ सह-अस्तित्व में रहते हैं। यह विविधता भारतीय समाज की सांस्कृतिक समृद्धि तथा "अनेकता में एकता" की अवधारणा को सुदृढ़ करती है। धार्मिक संरचना को समझने के लिए जनगणना 2011 के आँकड़े महत्वपूर्ण आधार प्रदान करते हैं।

उपरोक्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि भारत में हिंदू धर्म के अनुयायी बहुसंख्यक (79.80%) हैं, जबकि मुस्लिम (14.23%) दूसरा सबसे बड़ा धार्मिक समूह है। इसके अतिरिक्त ईसाई, सिख, बौद्ध एवं जैन समुदाय अपेक्षाकृत कम प्रतिशत में होते हुए भी महत्वपूर्ण सामाजिक उपस्थिति रखते हैं। यह वितरण दर्शाता है कि विभिन्न धार्मिक समुदाय भारतीय समाज की संरचना में संतुलित रूप से विद्यमान हैं तथा इसकी बहुलतावादी प्रकृति को प्रतिबिंबित करते है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

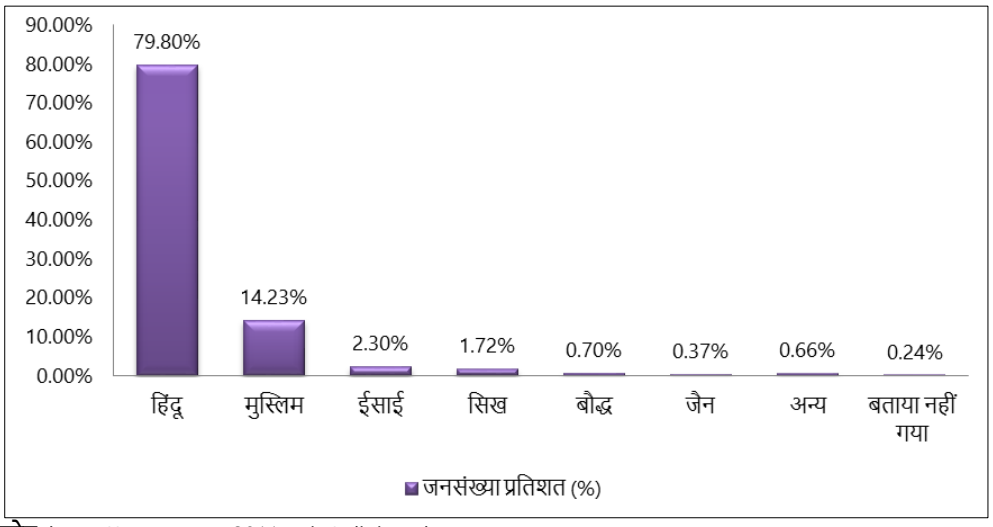

स्रोत: https://www.census2011.co.in/religion.php

चित्र 1: भारत में धर्म आधारित जनसंख्या वितरण (जनगणना 2011 के अनुसार)

भाषाई विविधता: भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार, भारत एक अत्यंत समृद्ध भाषाई विविधता वाला देश है। वर्ष 2011 की जनगणना में 121 भाषाओं तथा 1,369 तर्कसंगत मातृभाषाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्हें व्यापक रूप से 1,600 से अधिक बोलियों के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें से 22 भाषाएँ भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित (अनुसूचित भाषाएँ) हैं, जबकि शेष 99 भाषाएँ गैर-अनुसूचित श्रेणी में आती हैं। हिंदी देश की सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है, जिसे लगभग 43.63 प्रतिशत जनसंख्या, अर्थात् 52.83 करोड़ लोग, अपनी मातृभाषा के रूप में प्रयोग करते हैं। यह भाषाई परिदृश्य भारत की सांस्कृतिक बहुलता और "अनेकता में एकता" की अवधारणा को सुदृढ़ रूप से प्रतिबिंबित करता है।

STATEMENT - 4

SCHEDULED LANGUAGES IN DESCENDING ORDER OF SPEAKERS' STRENGTH - 2011

S. No.	Language	Persons who returned the language as their mother tongue	Percentage to total population
1	2	3	4
1	Hindi	52,83,47,193	43.63
2	Bengali	9,72,37,669	8.03
3	Marathi	8,30,26,680	6.86
4	Telugu	8,11,27,740	6.70
5	Tamil	6,90,26,881	5.70
6	Gujarati	5,54,92,554	4.58
7	Urdu	5,07,72,631	4.19
8	Kannada	4,37,06,512	3.61
9	Odia	3,75,21,324	3.10
10	Malayalam	3,48,38,819	2.88
11	Punjabi	3,31,24,726	2.74
12	Assamese	1,53,11,351	1.26
13	Maithili	1,35,83,464	1.12
14	Santali	73,68,192	0.61
15	Kashmiri	67,97,587	0.56
16	Nepali	29,26,168	0.24
17	Sindhi	27,72,264	0.23
18	Dogri	25,96,767	0.21
19	Konkani	22,56,502	0.19
20	Manipuri	17,61,079	0.15
21	Bodo	14,82,929	0.12
22	Sanskrit	24,821	N

N - Stands for negligible.

स्रोत: https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/42561

चित्र 2: भारत में अनुसूचित भाषाएँ (वक्ता संख्या के आधार पर)

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि भारत की भाषाई विविधता क्षेत्रीय आधार पर अत्यंत व्यापक है। विभिन्न भाषाएँ अपनी-अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, सामाजिक मूल्यों एवं ऐतिहासिक अनुभवों को अभिव्यक्त करती हैं।

इसके बावजूद ये सभी भाषाएँ एक साझा राष्ट्रीय ढाँचे के अंतर्गत कार्य करती हैं, जो भारतीय समाज की बहुलतावादी प्रकृति तथा "अनेकता में एकता" की अवधारणा को सुदृढ़ करता है। भाषाई विविधता न केवल संचार का माध्यम है, बल्कि यह भारतीय समाज की सांस्कृतिक पहचान का महत्वपूर्ण आधार भी है। साथ ही, हिंदी और अंग्रेज़ी जैसी संपर्क भाषाएँ विभिन्न भाषाई समूहों के मध्य संवाद स्थापित कर राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने में सहायक भूमिका निभाती हैं।

जातीय एवं सामाजिक संरचना: भारतीय समाज एक बहुस्तरीय एवं जटिल सामाजिक संरचना वाला समाज है, जिसमें विभिन्न जातीय एवं सामाजिक समूह अपनी विशिष्ट पहचान के साथ विद्यमान हैं। यह संरचना ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप विकसित हुई है, जो सामाजिक स्तरीकरण एवं असमानताओं को भी प्रतिबिंबित करती है।

सारणी 1: भारत में जातीय संरचना

क्रम संख्या	वर्ग	जनसंख्या प्रतिशत (%)
1	अनुसूचित जाति (SC)	16.60%
2	अनुसूचित जनजाति (ST)	8.60%
3	अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)	40–52% (अनुमान)
4	सामान्य वर्ग (General)	20–25% (अनुमान)

नोट: SC एवं ST के आँकड़े Census of India 2011 पर आधारित हैं, जबकि OBC एवं सामान्य वर्ग के आँकड़े Mandal Commission एवं National Sample Survey Office के अनुमानों पर आधारित हैं।

उपरोक्त आँकड़े स्पष्ट करते हैं कि भारतीय समाज विविध सामाजिक समूहों से निर्मित है, जिनकी अपनी विशिष्ट पहचान एवं सामाजिक स्थिति है। अनुसूचित जाति (16.6%) एवं अनुसूचित जनजाति (8.6%) जैसे वर्ग ऐतिहासिक रूप से सामाजिक एवं आर्थिक रूप से वंचित रहे हैं, जिनके आँकड़े जनगणना 2011 पर आधारित हैं। दूसरी ओर, अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी जनसंख्या के संबंध में मंडल आयोग की रिपोर्ट महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है। सामान्य वर्ग (General) शेष आबादी को निरूपित करता है, जिसका आकलन प्रायः अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। इस प्रकार, जातीय विविधता जहाँ एक ओर सामाजिक स्तरीकरण एवं असमानताओं को दर्शाती है, वहीं दूसरी ओर यह सामाजिक संगठन का आधार भी प्रदान करती है। वर्तमान में आरक्षण नीति, संवैधानिक प्रावधानों एवं विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से इन वर्गों के सामाजिक-आर्थिक सशक्तिकरण का प्रयास किया जा रहा है, जो सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास को सुदृढ़ करता है।

ग्रामीण–शहरी संरचना: भारतीय समाज की संरचना में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों का विशेष महत्व है, जो सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विविधता को स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करते हैं।

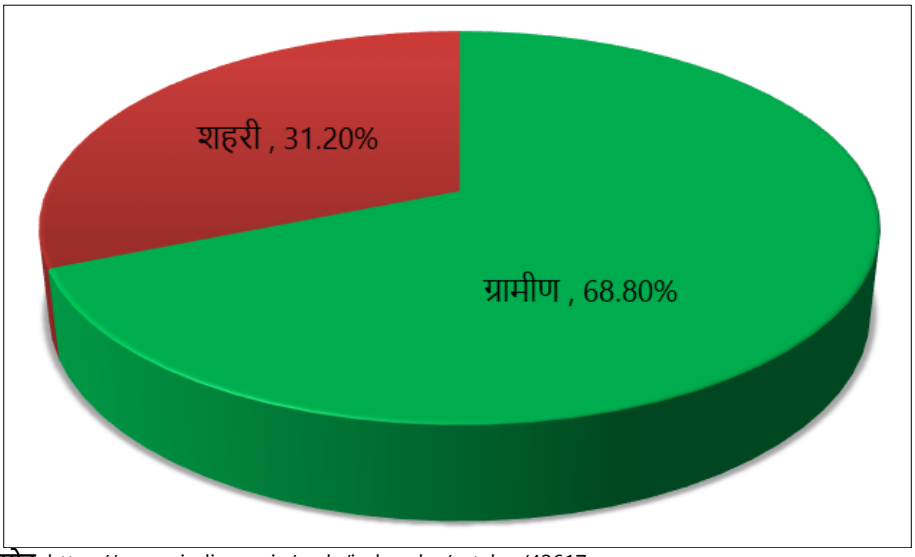

स्रोत: https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/42617

चित्र 3: भारत में ग्रामीण–शहरी जनसंख्या वितरण (जनगणना 2011 के अनुसार)

उपरोक्त आँकड़ों के अनुसार भारत की लगभग 68.8 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जबकि 31.2 प्रतिशत जनसंख्या शहरी क्षेत्रों में रहती है। यह तथ्य स्पष्ट करता है कि भारत की सामाजिक संरचना में ग्रामीण समाज आज भी प्रमुख आधार बना हुआ है। ग्रामीण जीवन-शैली सामान्यतः पारंपरिक मूल्यों, सामुदायिक संबंधों एवं कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था पर आधारित होती है, जबकि

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

शहरी समाज औद्योगीकरण, आधुनिकता, तकनीकी विकास एवं वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं से अधिक प्रभावित होता है। इसके बावजूद, ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अंतर्संबंध निरंतर विकसित हो रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र शहरी बाजारों को श्रम, कच्चा माल एवं खाद्य आपूर्ति प्रदान करते हैं, जबकि शहरी क्षेत्र ग्रामीण विकास के लिए तकनीक, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं रोजगार के अवसर उपलब्ध कराते हैं। इस प्रकार दोनों के बीच का यह पारस्परिक संबंध भारतीय समाज की समग्र एकता, संतुलन एवं विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विविधता और सामाजिक एकता के मध्य संबंध

भारतीय समाज में विविधता और सामाजिक एकता का संबंध अत्यंत जटिल, बहुआयामी तथा परस्पर पूरक है। सामान्यतः विविधता को विभाजन का कारण माना जाता है, किन्तु भारतीय संदर्भ में यही विविधता सामाजिक एकता के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यहाँ विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों एवं संस्कृतियों के लोग अपनी-अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखते हुए भी एक व्यापक सामाजिक ढाँचे के अंतर्गत जुड़े रहते हैं। भारतीय समाज में एकता का आधार केवल समानता नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व (co-existence), सहिष्णुता (tolerance) तथा समन्वय (integration) है। धार्मिक विविधता के बावजूद विभिन्न समुदाय एक-दूसरे के त्योहारों में भाग लेते हैं, जिससे सामाजिक निकटता और पारस्परिक समझ विकसित होती है। उदाहरण के लिए, दीपावली, ईद, गुरुपर्व एवं क्रिसमस जैसे पर्व केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि सामाजिक सहभागिता के माध्यम भी हैं। जातिगत विविधता के संदर्भ में भी देखा जा सकता है कि यद्यपि जाति सामाजिक विभाजन का आधार रही है, फिर भी यह सामाजिक संगठन का एक ढाँचा भी प्रदान करती है। विभिन्न जातियाँ परस्पर निर्भरता (interdependence) के माध्यम से जुड़ी रहती हैं, जो सामाजिक एकता को बनाए रखने में सहायक होती है। आधुनिक समय में शिक्षा, शहरीकरण और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने जातिगत सीमाओं को कुछ हद तक कम किया है, जिससे व्यापक सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा मिला है। संवैधानिक मूल्यों जैसे समानता, धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व ने भी विविधता के बीच एकता स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय संविधान सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान करता है, जिससे विभिन्न समुदायों के बीच विश्वास और सहयोग की भावना विकसित होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय समाज में विविधता और एकता विरोधी न होकर परस्पर पूरक हैं। विविधता सामाजिक जीवन को बहुआयामी बनाती है, जबकि एकता इन विविधताओं को एक संगठित सामाजिक ढाँचे में जोड़ने का कार्य करती है।

सामूहिक पहचान के निर्माण में सामाजिक प्रक्रियाओं की भूमिका

भारतीय समाज में सामूहिक पहचान (Collective Identity) का निर्माण एक सतत सामाजिक प्रक्रिया है, जो विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक कारकों के माध्यम से विकसित होती है। यह पहचान केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि समूह स्तर पर निर्मित होती है, जहाँ व्यक्ति स्वयं को किसी समुदाय, धर्म, जाति या राष्ट्र से जोड़ता है। सामाजिक अंतःक्रिया (Social Interaction) सामूहिक पहचान के निर्माण का प्रमुख आधार है। जब व्यक्ति परिवार, विद्यालय, समुदाय और अन्य सामाजिक संस्थाओं के माध्यम से दूसरों के संपर्क में आता है, तब वह सामाजिक मानदंडों, मूल्यों और परंपराओं को सीखता है। यही प्रक्रिया उसे एक विशेष समूह की पहचान प्रदान करती है। सामाजिकरण (Socialization) भी सामूहिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। परिवार, शिक्षा प्रणाली, धर्म और मीडिया जैसे संस्थान व्यक्ति को सामाजिक मूल्यों और सांस्कृतिक परंपराओं से परिचित कराते हैं। उदाहरण के लिए, विद्यालयों में राष्ट्रीय प्रतीकों, इतिहास और सांस्कृतिक विरासत के बारे में शिक्षा दी जाती है, जिससे राष्ट्रीय पहचान का विकास होता है। प्रतीकों और सांस्कृतिक चिह्नों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान, धार्मिक प्रतीक, लोक परंपराएँ और त्योहार सामूहिक पहचान को मजबूत करते हैं। ये प्रतीक लोगों में "हम" की भावना उत्पन्न करते हैं और उन्हें एक साझा सामाजिक ढाँचे से जोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, मीडिया और संचार के आधुनिक साधन भी सामूहिक पहचान के निर्माण में सहायक हैं। सोशल मीडिया, टेलीविजन और इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न समुदायों के लोग एक-दूसरे से जुड़ते हैं, जिससे राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर पहचान का विस्तार होता है। इस प्रकार सामूहिक पहचान एक स्थिर प्रक्रिया नहीं, बल्कि निरंतर विकसित होने वाली सामाजिक प्रक्रिया है, जिसमें परंपरा और आधुनिकता दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

आधुनिक सामाजिक परिवर्तन का विविधता और एकता पर प्रभाव

आधुनिकता, वैश्वीकरण, औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा तकनीकी विकास ने भारतीय समाज की संरचना को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। इन परिवर्तनों का प्रभाव सामाजिक विविधता और एकता दोनों पर देखा जा सकता है। शहरीकरण और औद्योगीकरण के कारण विभिन्न क्षेत्रों, जातियों और धर्मों के लोग एक ही स्थान पर आकर रहने लगे हैं, जिससे सामाजिक संपर्क बढ़ा है। इससे पारंपरिक सामाजिक सीमाएँ कमजोर हुई हैं और एक नई मिश्रित (composite) संस्कृति का विकास हुआ है। उदाहरण के लिए, महानगरों में विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के लोग एक साथ रहते हैं, जिससे सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा मिलता है। वैश्वीकरण के प्रभाव से पश्चिमी जीवन-शैली, उपभोक्तावाद और आधुनिक मूल्य भारतीय समाज में प्रवेश कर चुके हैं। इससे पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं में परिवर्तन आया है, विशेषकर परिवार, विवाह और जाति व्यवस्था में। हालांकि, यह परिवर्तन पूर्णतः परंपरा-विरोधी नहीं है, बल्कि कई बार परंपरा और आधुनिकता के बीच समन्वय देखने को मिलता है। तकनीकी विकास और डिजिटल संचार ने भी सामाजिक संबंधों को नया आयाम दिया है। इंटरनेट और सोशल मीडिया के माध्यम से लोग विभिन्न संस्कृतियों और विचारों से परिचित हो रहे हैं, जिससे व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण विकसित हो रहा है। यह एक ओर सामाजिक एकता को मजबूत करता है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक पहचान के संकट (identity crisis) को भी जन्म दे सकता है। राजनीतिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने भी विविधता और एकता को प्रभावित किया है। आरक्षण नीति, सामाजिक न्याय आंदोलन तथा पहचान आधारित राजनीति ने वंचित वर्गों को सशक्त बनाया है, लेकिन कभी-कभी यह सामाजिक विभाजन को भी बढ़ा सकती है। अतः आधुनिक सामाजिक परिवर्तन भारतीय समाज में विविधता और एकता दोनों को नए रूप में पुनर्गठित कर रहे हैं। यह प्रक्रिया गतिशील है, जिसमें अवसर और चुनौतियाँ दोनों शामिल हैं।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

सामाजिक समरसता को बनाए रखने वाले प्रमुख कारक

भारतीय समाज में सामाजिक समरसता (Social Harmony) बनाए रखने के लिए अनेक संरचनात्मक, सांस्कृतिक और संस्थागत कारक कार्य करते हैं। ये कारक विविधताओं के बीच संतुलन स्थापित करते हुए सामाजिक एकता को सुदृढ़ करते हैं।

- प्रथम, भारतीय संविधान सामाजिक समरसता का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। इसमें समानता, स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता और बंधुत्व जैसे मूल्यों को स्थापित किया गया है, जो सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर प्रदान करते हैं।
- द्वितीय, सांस्कृतिक परंपराएँ और साझा विरासत भी सामाजिक समरसता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय संस्कृति में सहिष्णुता, सह-अस्तित्व और समन्वय की भावना निहित है, जो विभिन्न समुदायों के बीच सामंजस्य स्थापित करती है।
- तृतीय, शिक्षा सामाजिक समरसता का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्तियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, सहिष्णुता और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है, जिससे सामाजिक एकता को बढ़ावा मिलता है।
- चतुर्थ, लोकतांत्रिक व्यवस्था और राजनीतिक संस्थाएँ भी सामाजिक समरसता को बनाए रखने में सहायक हैं। चुनाव, प्रतिनिधित्व और नीतिगत निर्णयों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक समूहों को अपनी आवाज उठाने का अवसर मिलता है।
- पंचम, मीडिया और संचार के साधन सामाजिक जागरूकता और एकता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सकारात्मक मीडिया प्रस्तुति विभिन्न समुदायों के बीच समझ और सहयोग को प्रोत्साहित करती है।

अंततः, नागरिक समाज (Civil Society) और सामाजिक आंदोलन भी सामाजिक समरसता को बनाए रखने में योगदान देते हैं। विभिन्न गैर-सरकारी संगठन, सामाजिक कार्यकर्ता और सामुदायिक पहलें सामाजिक न्याय, समानता और एकता को बढ़ावा देती हैं। इस प्रकार भारतीय समाज में सामाजिक समरसता अनेक कारकों के संयुक्त प्रयास का परिणाम है, जो विविधताओं के बीच संतुलन स्थापित कर "अनेकता में एकता" की भावना को सुदृढ़ करते हैं।

6. निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज अपनी बहुलतावादी संरचना के कारण अत्यंत जटिल, गतिशील एवं विशिष्ट स्वरूप रखता है। यहाँ जाति, धर्म, भाषा, संस्कृति एवं जीवन-शैली की विविधताएँ न केवल सामाजिक भिन्नताओं को दर्शाती हैं, बल्कि सामाजिक संगठन और सामूहिक जीवन के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारतीय समाज की विशेषता यह है कि यहाँ विविधता और एकता परस्पर विरोधी न होकर एक-दूसरे के पूरक रूप में कार्य करती हैं। अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जाति और धर्म जैसे पारंपरिक तत्व आज भी सामूहिक पहचान के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यद्यपि आधुनिकता, शहरीकरण, शिक्षा और वैश्वीकरण के प्रभाव से इन संस्थाओं के स्वरूप में परिवर्तन आया है, फिर भी ये सामाजिक जीवन में सक्रिय हैं। व्यक्ति एक साथ कई स्तरों जातीय, धार्मिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय पर अपनी पहचान विकसित करता है, जिससे बहुस्तरीय पहचान का निर्माण होता है। विविधता और सामाजिक एकता के संबंध में यह स्पष्ट है कि भारतीय समाज में एकता का आधार समानता नहीं, बल्कि सह-अस्तित्व, सहिष्णुता और समन्वय है। संवैधानिक मूल्य—जैसे समानता, धर्मनिरपेक्षता, स्वतंत्रता और बंधुत्व—इस एकता को संस्थागत आधार प्रदान करते हैं। साथ ही, आधुनिक सामाजिक परिवर्तन जैसे शहरीकरण, औद्योगीकरण और वैश्वीकरण ने सामाजिक संपर्क और सांस्कृतिक आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया है, हालांकि इससे कुछ चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि "अनेकता में एकता" भारतीय समाज की केवल सांस्कृतिक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि एक जीवंत सामाजिक वास्तविकता है, जो सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाए रखती है।

संदर्भ सूची

1. Appadurai A. Modernity at large: Cultural dimensions of globalization. The University of Minnesota Press; 1996.
2. Beteille A. Caste, class and power: Changing patterns of stratification in a Tanjore village. 3rd ed. Oxford India Perennials Series; 1966. doi:10.1093/acprof:oso/9780198077435.001.0001.
3. Beteille A. Sociology: Essays on approach and method. Oxford University Press; 2002.
4. Blumer H. Symbolic interactionism: Perspective and method. University of California Press; 1986. (Original work published 1969).
5. Bose NK. The structure of Hindu society. Orient Longman; 1975.
6. Census of India. Religion data. Census2011.co.in; 2011. Available from: https://www.census2011.co.in/religion.php
7. Office of the Registrar General and Census Commissioner, India. Census of India 2011: Language atlas of India. Censusindia.gov.in; 2022. Available from: https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/42561
8. Coser LA. The functions of social conflict. The Free Press; 1956.
9. Durkheim E. The division of labor in society. Translated by Halls WD. The Free Press; 1984. (Original work published 1893).
10. Ghurye GS. Caste and race in India. 5th ed. Popular Prakashan; 1969.
11. Karve I. Kinship organization in India. 2nd ed. Asia Publishing House; 1965.
12. Mandal Commission. Mandal Commission. Wikipedia; 2026. Available from: https://en.wikipedia.org/wiki/Mandal_Commission
13. Marx K, Engels F. The Communist Manifesto. Penguin; 1848.
14. Mead GH. Mind, self, and society. Translated by Morris CW. The University of Chicago Press; 1934.
15. Office of the Registrar General and Census Commissioner, India. Rural urban distribution of population, India, 2011. Censusindia.gov.in; 2022. Available from: https://censusindia.gov.in/nada/index.php/catalog/42617
16. Scheduled caste population in India. Census2011.co.in; 2011. Available from: https://www.census2011.co.in/scheduled-castes.php

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

17. Office of the Registrar General, India. Scheduled tribe data - census 2011 India. 2011. Available from: https://www.census2011.co.in/scheduled-tribes.php
18. Singh Y. Modernization of Indian tradition. Thomson Press Limited; 1973.
19. Sougaijam A. Diversification and unification in Indian social identity. Asian Review of Social Sciences. 2016;5(1):5-11. doi:10.51983/arss-2016.5.1.2566.
20. Srinivas MN. Social change in modern India. University of California Press, 1966.
21. Srinivas MN. India's social structure. Hindustan Publishing Corporation; 1980.

Creative Commons (CC) License

This article is an open-access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution–Non-Commercial–No Derivatives 4.0 International (CC BY-NC-ND 4.0) license. This license permits sharing and redistribution of the article in any medium or format for non-commercial purposes only, provided that appropriate credit is given to the original author(s) and source. No modifications, adaptations, or derivative works are permitted under this license.

About the Corresponding Author

डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय समाजशास्त्र के स्वतंत्र शोधकर्ता हैं तथा डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उत्तर प्रदेश से संबद्ध हैं। आपके शोध कार्य सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, ग्रामीण विकास एवं समकालीन सामाजिक मुद्दों पर केंद्रित हैं। आपने विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठियों तथा शोध पत्रिकाओं में सक्रिय अकादमिक योगदान दिया है।

© 2026 डॉ. शैलेन्द्र कुमार पाण्डेय. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND).https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/